शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

जैन धर्म में अपरिग्रह (असंग्रह) का प्रमाण्यवाद

अपराजिता कुमारी
शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना
ईमेलः *kumariaprajita1988@gmail.com*

प्राप्तिः 23.08.2021
स्वीकृतः 12.09.2021

सारांश

जैन धर्म को तत्वमीमांसीया, सापेक्षवादी तथा बहुतत्ववादी माना गया है। वस्तुतः जैन धर्म के अन्तर्गत जीव कर्म, पुदगल चेतन ये सभी जैन धर्म में आते हैं जो सभी धर्मों से अलग और भिन्न होते हैं किन्तु इसके साथ–साथ ये स्वतंत्र रूप से जैन धर्म में देखने को मिलते हैं। जैन धर्म में देवी, देवताओं, मूर्तिपूजा इन सभी की आलोचना की गई है। जैन धर्म में जीव को आत्मा का स्वरूप माना गया है। जीव हो या आत्मा हो, ये दोनों एक–दूसरे का चैतन्य स्वरूप है। जैन धर्म में न्याय–वैशेशिक, प्रभाकर, कुमारिल भट्ट इत्यादि, इन सभी दार्शनिकों का यह मत था कि आत्मा, जड़, जीव, चेतन ये सभी एक–दूसरे का आगन्तुक गुण का सम्मिश्रण है। जैन धर्म में आत्मा चेतनस्वरूप नहीं हो सकता किन्तु आत्मा चेतनवान गुण का मौलिक प्रमाण है। उदाहरण स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि अगर आत्मा को जड़ स्वरूप माना है तो तथ्य भी हो सकता है। चेतन आत्मा का स्वाभाविक गुण हो सकता है। जिस तरह उदाहरण देते हुए हम यह कह सकते हैं कि अग्नि से चिंगारी का उत्पन्न होना उसी तरह आत्मा को शरीर से जुड़ा रहना। इसलिए जैन धर्म में आत्मा को शाश्वत और अनन्त माना गया है। आत्मा तभी चैतन रूप को स्वीकार किया जाता है। जब वह सभी गुणों का बहुतत्व गुण पूर्ण रूप से विराजमान हो। जैन धर्म में सभी वस्तुओं में गुण एवं पर्याय पूर्ण रूप विकसित होते हैं, परन्तु जीव का वह गुण जो पर्याय हो। चेतना उसका गुण है तो वह औपशमिक, क्षयिक, क्षयोपशमिक औदयिक ये सभी परिणामिक इत्यादि जीव में पूर्ण रूप से पाये जाते हैं।

मूल बिन्दु

अपरिग्रह, प्रमाण्यवाद, सम्यक दर्शन–ज्ञान–चरित्र।

अपरिग्रह (असंग्रह) की अवधारणा

जैन दर्शन में विशयासक्ति का परित्याग अपरिग्रह हैं। जैन दर्शन के अनुसार मुमुक्ष को शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन विशयों का परित्याग करना चाहिए। जैन सन्यासी से पूर्ण अपरिग्रह की अपेक्षा की गयी हैं। वह किसी भी वस्तु को भिक्षा पात्र को भी अपना नहीं कह सकता। यहां गृहस्थों से केवल संतोश की अपेक्षा की गयी है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र का अनुसरण करते हुए समस्त बाधाओं को दूर करके मोक्ष प्राप्त कर सकता हैं।

जैन दर्शन में अपरिग्रह को **'असंग्रह'** भी कहा जाता है। वस्तुतः अपरिग्रह भी कहा जाता है वस्तुतः अपरिग्रह का अर्थ होता है। सांसारिक विशयों या फिर सांसारिक मोह, माया, आसक्ति ये सभी दुःखों का एक मात्र कारण माना गया है। अतः जिस तरह हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि सांसारिक विषयाशक्ति या सभी विशयों सुख की त्याग ही अपरिग्रह है या फिर असंग्रह है। जैन दर्शन में जरुरत से ज्यादा अधिक धन संचय करना या फिर जमा करने का जो सुख प्राप्त होता है। उससे धन संग्रह की प्रवृत्ति का भी त्याग करना पड़ता है। जैन धर्म में "संतोश" को बहुत बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है इसलिए इस श्लोक में "संतोश" के बारे में कहा जाता है। "संतोशम् परम् सुखम्" यानि कि संतोश ही मानव–जाति का सबसे बहुमूल्य धन होता है। जो व्यक्ति को सभी वस्तुओं और सभी समस्याओं से दूर रखता है या फिर हम यह कह सकते हैं कि–

"जब उपजे संतोश धन,
सब धन धूरि समान।"

अर्थात् इस श्लोक में संतोश पर बल दिया गया है, या फिर धन संग्रह या विशयाशक्ति की प्रवृत्ति के अभाव को ही कहा जाता है। जैन धर्म में वैशेषिक दर्शन में अपरिग्रह को सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उदाहरण देते हुए कहा गया है कि रोज कृषि क्षेत्र में फसल कट जाने पर जब अन्न के दाने धरती पर गिर जाते तो उस दाने को चुन–चुन कर उठाकर इकट्ठा कर लिया जाता है जिससे कृशक लोगों के जीवन गुजर–बसर होता है। इसलिए महात्मा गांधी जी ने "ट्रस्टीशिप" का सिद्धान्त देते हुए अपरिग्रह पर बल दिया गया है किन्तु गांधी जी ने अपने कथन में कहा करते थे कि "How Many things without" यह कह कर तथा "Trusteeships" का सिद्धान्त देकर अपरिग्रह का प्रबल दिया गया था।

भारतीय दर्शन में अपरिग्रह को वर्तमान समय में सभी समस्याओं और कष्टों का निवारण निकालने का एकमात्र कारण नैतिक विचारों पर बल दिया है। अतः इस तरह नैतिक जीवन की सबसे बाधा के रूप में संग्रह–वृत्ति ही है। इसलिए आचार्य विनोबा भावे ने दो त्याग+एक भोग का सूत्र देकर जीवन के सफलता का मार्ग अपरिग्रह को आवश्यक रूप में माना है। वस्तुतः अपरिग्रह का ही एक और महत्वपूर्ण रूप मालकियत या फिर स्वामित्व राजनयिक रूप माना गया है।

जैन धर्म जैन संतों या फिर वस्त्र त्याग, मात्र एक लंगोट धारण करना तथा अन्न त्याग कर कंदमूल फलों का भरपूर आनन्द लेना या फिर सभी वस्तुओं या फिर चीजों के रूप में मूल रूप से ग्रहण करना ही "अपरिग्रह" है।

प्रामाण्यवाद की अवधारणा

जैन धर्म में प्रमाण्यवाद को अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय माना गया है। वस्तुतः न्याय दर्शन तथा मीमांसा दर्शन में महत्वपूर्ण आधार ज्ञान को प्रमाण्य सिद्धान्त माना गया है। लेकिन जैन धर्म मिथिला विद्वग्मण्डली में एक किम्बदन्ती प्रसिद्ध स्वरुप ज्ञान को बहुत बड़े विद्वान कवि मिथिला के महाराजा सभी में मौजूद थे। जैन धर्म में मिथिला के महाराजा कविता सुनाने में "नमः प्रामाण्यवाद ममकवित्वा अहारिणों" को अपने शब्दों के अर्थों में स्वीकार किया है।

अतः उपर्युक्त प्रामाण्यवाद का विचार अलग–अलग शब्दों और अलग–अलग अर्थों में किया जाता है वस्तुतः हम यह कह सकते है कि प्रामाण्यवाद का वह ज्ञान है जो शब्दों में यथार्थ रूप से विकसित है या फिर हम यह उदाहरण देते हुए कह सकते हैं कि दूसरे शब्दों में प्रत्येक प्रामाण्यवाद

स्वतंत्र रूप से ज्ञान को उत्पन्न कर सकता है। इसी तरह प्रामाण्यवाद का विषय पूर्ण रूप से नैयायिकों के साथ मीमांसा को बहुत शास्त्रार्थ विचार रूप से व्यक्त होता रहा है। इसलिए परतः प्रामाण्यवाद के विचार उत्पन्न हो जाने के बाद वेद और उपनिशदों पर बहुत अधिक बल दिया गया है वस्तुतः वेद प्रामाण्यवाद में प्रत्यक्ष इत्यादि मीमांसको पर स्वतः प्रमाण नहीं हो प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार करना चाहिए। उदाहरण स्वरुप हम यह कह सकते हैं कि अगर हम अपने पंचज्ञानेन्द्रियों से जो भी वस्तु का अनुभव करते हैं या फिर इसका ज्ञान हमें प्रत्यक्ष रूप से प्रमाण होता है तो हम इसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं जैसे जो भी वस्तु अपने आँखों से देख रहें तो इसका ज्ञान हमे प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिल रही है। या फिर यह कह सकते हैं जहाँ–जहाँ धुआँ वहाँ–वहाँ आग है। यानि कि धुआँ से आग का ज्ञान प्राप्त होना प्रत्यक्ष प्रामाण्यवाद है।

निष्कर्ष

अतः निश्कर्षतः हम यह कह सकते हैं संसार में मानव–जाति को जीवनयापन करने के लिए विशयाशक्ति का परित्याग करना जरूरी होता है। यानि किसी भी वस्तु या फिर किसी चीज को अपनाने के लिए व्यक्ति के मन में नैतिक विचारों का होना बहुत जरुरी होता है। इसलिए कहा जाता है कि हमेशा मानव–जाति को संतोश करना चाहिए क्योंकि **"संतोशम् परम् सुखम्"** यानि कि संतोश ही परम सुख की अनुभूति कराती है इसलिए किसी भी या फिर जरूरत से ज्यादा धन का संचय करना अपरिग्रह या फिर इसे हम जैन धर्म में असंग्रह कहते हैं। जैन धर्म में विषय शक्ति का परित्याग करने के लिए पंचमहाव्रत को जरुर अपनाना चाहिए। इससे मानव–जाति के मन में सकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं जिससे सफलता की प्राप्ति होती है या फिर सभी समस्याओं का समाधान निकाला जाता है।

सन्दर्भ–सूची

1. डॉ0 लाल चन्द जैन, जैन दर्शन में आत्मा का विचार, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, **पृ0–68** ।
2. डॉ0 राधाकृश्णन, भारतीय दर्शन प्रथम भाग, **पृ0–259** ।
3. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, **पृ0–178** ।
4. औपशमिकक्षायिको भावो मिश्रारय जीवस्य स्वतत्वमौदयिक परिणामिको च तत्वार्थसूत्र, **2/1** ।
5. भारतीय दर्शन के मूल संप्रत्यय (कार्यानन्द शर्मा) संतोशम् परम् सुखम्, **पृ0–155** ।
6. गांधी जी का ट्रस्टीशिप, **पृ0–156** ।
7. भारतीय दर्शन का प्रामाणयवाद, **पृ0–114** ।